उच्च न्यायालय उत्तराखण्ड, नैनीताल

रिट याचिका (एस/एस) संख्या 612 वर्श 2021

निर्णय की तिथिः 29.09.2021

स्वजल कर्मचारी संघ.....याचिकाकर्ता

बनाम

सचिव (पेयजल, जल एवं स्वच्छता)

उत्तराखण्ड राज्य व अन्य .....प्रत्यर्थीगण

उपस्थितः

श्री एम.सी.पन्त सहित सहित श्री रक्षित जोषी, याचिकर्ता के अधिवक्ता

श्री सी.एसत्र रावत, मुख्य स्थायी अधिवक्ता प्रत्यर्थी संख्या 1, 2 व 3 की ओर से

श्री एस.एसत्र चौहान, अधिवक्ता प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से।

श्री पंकज कुमार, अधिवक्ता, श्री नीरज गर्ग अधिवक्ता, का संक्षिप्त विवरण रखते हुये प्रत्यर्थी संख्या 5 की ओर से

(निर्णय)

माननीय रविन्द्र मैठाणी, जे. (मौखिक)

वर्तमान याचिका में दिनांक 05.02.2021, 12.02.2021 और 21.08.2021 के आदेशों को मनमाने, अन्यायपूर्ण, शून्य और अनुचित हैं, के आधार पर चुनौती दी गई है। बड़े हुए वेतन आदि की राहत भी मांगी गई है।

2. याचिका प्रतिवादी संख्या 4 निदेशक, स्वजल के अधीनस्थ कार्य करने वाले 210 श्रमिकों (इसके बाद उन्हें ''याचिकाकर्ता'' के रूप में संदर्भित किया जाएगा) की ओर से दायर की गई

है। याचिकाकर्ताओं का मामला है कि वे उत्तराखंड राज्य के निर्माण से पहले, उत्तर प्रदेश राज्य में, उत्तर प्रदेश भूतपूर्व सैनिक कल्याण निगम (''यूपीएसयूएल'') के माध्यम से कार्यरत थे। उन्हें दिनांक 17.03.1997 को चौथे वेतन आयोग का लाभ दिया गया और उसके बाद उन्हें 5वें वेतन आयोग का लाभ भी दिया गया। उत्तराखंड राज्य के निर्माण के बाद, दिनांक 20.04.2021 के शासनादेश के आधार पर,उत्तराखंड राज्य में लागू सेवा शर्तों के साथ उनकी सेवाएँ इस पद पर जारी रहीं। इसके बाद, वर्ष 2005 में, याचिकाकर्ताओं को उत्तराखंड भूतपूर्व सैनिक कल्याण निगम लिमिटेड (''यूपीएनएल'') के माध्यम से नियोजित किया गया था। उनकी सेवा शर्तें वही रहीं,

3. दिनांक 15.09.2017 के एक आदेश द्वारा याचिकाकर्ताओं का वेतन कम कर दिया गया। याचिकाकर्ताओं ने उक्त आदेश इस न्यायालय में wp(s/s) संख्या 2795/2017, स्वजल कर्मचारी संघ और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य (''पहली याचिका'') में चुनौती दी। पहली याचिका पर 03.07.2018 को निर्णय लिया गया। पहली याचिका में राज्य की ओर से बयान दिया गया कि आक्षेपित शासनादेश दिनांक 15.09.2017 को वापस ले लिया गया है।

4. दिनांक 24.10.2017 को प्रतिवादी संख्या 4 ने स्वजल के तहत कर्मचारियों के पुनर्गठन के लिए एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया। एक विवाद उत्पन्न हुआ और उत्तराखंड राज्य ने मामले को एक संदर्भ के तहत औद्योगिक न्यायाधिकरण (''ट्रिब्यूनल'') को संदर्भित कर दिया। संदर्भ इस प्रकार हैः–

''क्या विभागीय ढांचे में 210 कर्मियों की सेवा शर्तों में बदलाव के लिए नियोक्ता द्वारा भेजा गया प्रस्ताव उचित/विधिक है? यदि नहीं, तो 2010 के कर्मी किस राहत के हकदार हैं और अन्य विवरण?''

5. इस संदर्भ के आधार पर, 2018 का न्यायनिर्णयन केस नंबर 15(''न्यायनिर्णयन केस'') ट्रिब्यूनल के समक्ष संस्थित किया गया था। न्यायनिर्णयन मामला अभी भी लंबित था, जब प्रतिवादी संख्या 1 राज्य सरकार ने दिनांक 21.08.2020 को एक शासनादेश (''जीओ'') जारी किया गया, जिसके द्वारा यूपीएनएल के माध्यम से लगे श्रमिकों को दिए जाने वाले मानदेय को संशोधित किया गया। दिनांक 21.08.2020 के शासनादेश के आधार पर, दिनांक 05.02. 2021 को एक और संचार विशेष रूप से प्रतिवादी संख्या 4 निदेशक, स्वजल को भेजा गया था। शासनादेश दिनांक 21.08.2020 का अनुपालन करने के लिए। इसके बाद प्रतिवादी सं0 4, निदेशक, स्वजल ने 12.05.2021 को एक परिणामी आदेश जारी किया, जिससे याचिकाकर्ताओं पर दिनांक 21.08.2020 का शासनादेश लागू हो गया। याचिकाकर्ता इन तीन आदेशों से व्यथित हैं।

6. याचिकाकर्ताओं का कहना है कि न्याय निर्णयन मामले के लंबित रहने के दौरान सेवा शर्तों में बदलाव ट्रिब्यूनल की अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता था। याचिकाकर्ताओं का यह भी मामला है कि विवादित आदेश भारत के संविधान के प्रावधानों के विपरीत हैं। दिनांक 21.08.2020 के शासनादेश द्वारा याचिकाकर्ताओं के वेतन में भारी कटौती की गई है। ऐसा नहीं किया जा सकता

था। याचिका में विवादित आदेशों को चुनौती देने के लिए कई अन्य आधार भी उठाए गए हैं।

7. प्रतिवादी संख्या 1 ने अपना प्रतिशपथपत्र दाखिल किया। तथ्यात्मक पहलुओं पर ज्यादा विवाद नहीं है, राज्य के अनुसार याचिकाकर्ता अस्थायी पदों पर कार्यरत थे। समय–समय पर उनके पद की अवधि बढ़ायी जाती रहीं। 31.08.2019 को कार्यलय समाप्त होने के बाद पद विस्तार के लिए प्रस्ताव भेजा गया था. इसके बाद मामला उचित अनुमोदन के लिए वित्त विभाग को भेज दिया गया। वित्त विभाग ने 02.12.2020 को अस्थायी पद के विस्तार को मंजूरी देते हुए यह भी राय दी कि याचिकाकर्ताओं को भी राज्य सरकार द्वारा दिनांक 21.08.2020 के शासनादेश द्वारा निर्धारित दरों का कड़ाई से पालन करते हुए पारिश्रमिक का भुगतान किया जाना चाहिए। प्रतिवादी संख्या 1 के अनुसार याचिकाकर्ताओं को उनके वेतन का भुगतान यूपीएनएल के माध्यम से किया जाता है, इसलिए, राज्य और याचिकाकर्ताओं के बीच नियोक्ता और कर्मचारी का कोई संबंध नहीं है। वित्त विभाग की राय के आधार पर याचिकाकर्ताओं को पारिश्रमिक भुगतान के आदेश शासनादेश दिनांक 21.08.2020 के अनुसार किये गये हैं।

8. प्रतिवादी संख्या 4 निदेशक, स्वजल नियोक्ता है, प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा अपने प्रतिशपथपत्र द्वारा कहा गया है कि रिट याचिका पोषणीय नहीं है। इस आधार पर आपत्ति की गई है कि चूंकि न्यायनिर्णयन का मामला अभी भी ट्रिब्यूनल के समक्ष लंबित है, जिसमें यूपी औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (''अधिनियम'') की धारा 6–एफ के तहत एक आवेदन अभी भी

लंबित है, इसलिए मामले को दो न्यायालयों में उठाया नहीं जा सकता है। प्रतिशपथ के प्रस्तर संख्या 6 में, प्रतिवादी नं. 4 ने एक विशिष्ट तर्क दिया कि सेवा अनुबंध के खंड 23 में प्रावधान करती है कि ''पहले पक्ष के उपरोक्त कर्मियों को दूसरे पक्ष के कर्मचारियों/अधिकारियों द्वारा गठित किसी भी यूनियन का सदस्य बनने की अनुमति नहीं है वह प्रबंधन और कर्मचारी के बीच किसी विवाद के संबंध में किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं करेंगे।

9. प्रतिवादी संख्या 3, सचिव, सैनिक कल्याण और पुनर्वास, उत्तराखंड राज्य ने भी अपना प्रतिशपथपत्र दायर किया है और यह कहा गया है कि यूपीएनएल के माध्यम से लगे श्रमिकों को शासनादेश दिनांक 21.08.2020 के अनुसार वेतन दिया जाता है।

10. प्रतिवादी संख्या 5 यूपीएनएल ने भी अपना अलग प्रति शपथपत्र दाखिल किया है और स्वीकार किया है कि याचिकाकर्ताओं को शासनादेश दिनांक 21.08.2020 के अनुसार पारिश्रमिक का भुगतान किया जा रहा है।

11. याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रति शपथपत्र भी दाखिल किया गया है।

12. उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्तागया को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

13. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि रिट याचिका सुनवाई योग्य है। न्यायनिर्णयन मामले के लंबित रहने के दौरान, प्रतिवादी संख्या 1 ने दिनांक 21.08.2020 को शासनादेश जारी किया, जो न्यायिक कार्यवाही में हस्तक्षेप है, जो न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा 2 (सी) के तहत परिभाषित

अवमानना के समान है। विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्कों में निम्नलिखित बिंदु भी उठाए हैंः–

(i) जो कार्य प्रत्यक्ष रूप से नहीं किया जा सकता उसे अप्रत्यक्ष रूप से करने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

(ii) याचिकाकर्ताओं की सेवा शर्तों में बदलाव के संबंध में विवाद ट्रिब्यूनल और प्रतिवादी संख्या 4 के समक्ष लंबित है। नियोक्ता ट्रिब्यूनल की अनुमति के बिना सेवा शर्तों में बदलाव नहीं कर सकता था। इसलिए, प्रतिवादी सं 4 दिनांक 21.08.2020 के शासनादेश या दिनांक 05.02.2021 के आदेश के आधार पर भी सेवा शर्तों में परिवर्तन की अनुमति नहीं दी जा सकती।

(iii) याचिकाकर्ताओं को मार्च, 2020 से वेतन का भुगतान नहीं किया गया था और आक्षेपित आदेशों के बाद, उन्हें संशोधित दर पर मार्च, 2020 से बकाया का भुगतान किया गया था, जो कि स्वीकार्य नहीं था क्योंकि दिनांक 21.08. 2020 के शासनादेश भी को भी पूर्वव्यापी प्रभाव नहीं दिया जा सकता था।

(iv) पहली याचिका में भी यही विवादक था। उस समय, राज्य ने याचिकाकर्ताओं का वेतन कम कर दिया, जिसे चुनौती दी गई और बाद में राज्य ने दिनांक 15.09.2017 के आदेश को वापस ले लिया, जिसके द्वारा याचिकाकर्ताओं का वेतन कम कर दिया गया था। अब इसी तरह की कार्यवाही को प्रतिवादी संख्या 1

और प्रतिवादी नं. 4 के द्वारा ली जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

(5) प्रतिवादी सं. 1 ट्रिब्यूनल के समक्ष पक्षकार नहीं है और प्रतिवादी नं. 1 ने अपने प्रतिशपथपत्र में स्वीकार किया है कि अधिनियम की धारा 6ई के प्रावधान उन पर लागू नहीं होते हैं क्योंकि वे नियोक्ता नहीं हैं और ''राज्य'' और ''याचिकाकर्ताओं' के बीच ''नियोक्ता'' और ''कर्मचारी'' का कोई संबंध नहीं है।

(6) दिनांक 21.08.2020 का शासनादेश ट्रिब्यूनल के समक्ष विवाद का विषय नहीं है। राज्य सरकार ट्रिब्यूनल में एक पक्षकार नहीं है। राज्य सरकार ने मामले को न्यायनिर्णयन के लिए ट्रिब्यूनल में भेज दिया गया है और नियोक्ता प्रतिवादी संख्या 4 निदेशक, स्वजल है।

(7) याचिकाकर्ताओं ने ट्रिब्यूनल के समक्ष अधिनियम की धारा 6 एफ के तहत भी शिकायत दर्ज की है। लेकिन इसका दायरा दिनांक 5.2.2021 और 12.2.2021 के आदेश से आगे नहीं बढ़ सकता। ट्रिब्यूनल के समक्ष अधिनियम की धारा 6 एफ के तहत कार्यवाही में, दिनांक 21.8.2020 के शासनादेश का परीक्षण नहीं किया जा सकता क्योंकि यह नियोक्ता द्वारा परित नहीं किया गया था। यह शासनादेश राज्य सरकार द्वारा जारी किया गया है।

(8) राज्य सरकार याचिकाकर्ताओं के वेतन को कम करने के लिए ऐसा कोई भी आदेश परित करने से पहले

ट्रिब्यूनल के निर्णय की प्रतीक्षा कर सकती थी। इसलिए, यह तर्क दिया गया है कि रिट याचिका की अनुमति दी जानी चाहिए।

14. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्क के समर्थन में, निम्नलिखित विधिक व्यवस्थाओं को आधार बनाया है–

(i) अनाईमलाई नेशनल एस्टेट वर्कर्स यूनियन महासचिव, वालपराई, और अन्य द्वारा प्रतिनिधित्व बनाम प्लांटर्स एसोसिएषन ऑफ तमिलनाडू, कॉम्बेटोर, और अन्य,2002 (4) एलएलएन 530।

(ii) एक्स, कैप्टन केसी अरोड़ा और अन्य, बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, (**1984**) 3 एससीसी 281

(iii) मारिया मार्गाडिया सिकेरिया बनाम इरास्मों जैक डी सिकेरिया, (**2012**) 5 एससीसी 370

(iv) जयपुर जिला सहकारी भूमि विकास बनाम राम गोपाल शर्मा और अन्य, (**2002**) 2 एससीसी

(v) संजीव कुमार बनाम पीओ, लेबर कोर्ट, देहरादून, 2011 एससीसी ऑनलाईन यूटीटी 910

(vi) बाल्को कैप्टिव पावर प्लांट मजदूर संघ और अन्य बनाम नेशनल थर्मल पावर कॉरपोरेशन और अन्य, (**2007**) 14 एससीसी

15. अनाईमलाई नेशनल एस्अेट (सुप्रा) के मामले में, मद्रास उच्च न्यायालय ने औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (संक्षेप में, '' आईडी

अधिनियम'') की धारा 33 के दायरे पर चर्चा की। आईडी अधिनियम की धारा 33, वास्तव में, अधिनियम की धारा 6ई के परिसीमित है। न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की:

''वैकल्पिक उपाय और विववादकों की भयावहता:

वैकल्पिक उपचार का मुद्दा मुद्दे की भयावहता से जुड़ा हुआ है और रखरखाव के मुद्दे के लिए भी प्रासंगिक होगा जिस पर उपर चर्चा की गई है। श्री ए.एल. सोमयाजी और श्री विजय नारायण दोनों ने विस्तार से इस बात पर जोर दिया था कि अधिनियम के तहत गठित फोरम प्रभावी उपाय थे और इस तरह रिट याचिकाओं पर विचार नहीं किया जा सकता है। आगे कहा गया है कि अधिनियम की धारा 33ए पीड़ित पक्ष को धारा 33(1)(ए) के उल्लंघन के खिलाफ शिकायत करने का अधिकार देती है और अधिनियम के तहत इस तरह याचिकाकर्ता रिट क्षेत्राधिकार का आह्वाहन करने के हकदार नहीं थे। यह सच है कि अधिनियम की धारा 33ए एक नियोक्ता द्वारा अधिनियम के तहत अधिकारियों के समक्ष कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान अधिनियम की धारा 33 के प्रावधानों का उल्लंघन करने की स्थिति से संबंधित है। उल्लंघन से पीड़ित कोई कर्मचारी संबंधित प्राधिकारी को लिखित रूप में शिकायत कर सकता है और ऐसा प्राधिकारी उस पर इस तरह निर्णय देगा जैसे कि यह उसके समक्ष लंबित कोई विवाद हो। इस आपत्ति की सराहना करने के लिए, अधिनियम की धारा 33(1) को उल्लेख करना आवश्यक है।

''33. कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान सेवा की शर्तों आदि का कतिपय परिस्थितियों में न बदला जाना – (1) किसी औद्योगिक विवाद के सम्बन्ध में किसी सुलह अधिकारी या बोर्ड के समक्ष की किसी सुलह कार्यवाही के या (किसी मध्यस्थ या) श्रम श्रम न्यायालय या न्यायाधिकरण या राष्ट्रीय न्यायाधिकरण के समक्ष की किसी भी कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान कोई भी नियोजक ऐसे प्राधिकारी की, जिसके समक्ष कार्यवाही लम्बित है, लिखित अभिव्यक्त अनुज्ञा के बिना–

(क) न तो उस विवाद से संसक्त किसी विषय के बारे में उन सेवा की शर्तों को, जो ऐसी कार्यवाही के प्रारम्भ से ठीक पहले ऐसे विवाद से संपृक्त कर्मकारों को लागू होती हैं, इस प्रकार परिवर्तित करेगा कि उन कर्मकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े, और

(बी) न ऐसे विवाद से संपृक्त किसी कर्मकार को, विवाद से संसक्त किसी अवचार के लिये, चाहे पदच्युति द्वारा या अन्यथा उन्मोचित या दंडित करेगा।

16. आगे बढ़ने से पहले, आई.डी अधिनियम की धारा 33ए के प्रावधानों की जांच करना उपयुक्त होगा।यह इस प्रकार हैः–

''33ए. यह न्यायनिर्णीत करेन के लिये विशेष उपबन्ध कि कार्यवाहियों के लम्बित रहने के दौरान सेवा की शर्तें आदि बदली हैं या नहीं– जहां कि कोई नियोजक कासर्यवाही के सुलह अधिकारी, बोर्ड, मध्यस्थ, श्रम न्यायालय अधिकरण या राष्ट्रीय अधिकरण के समक्ष लंबित रहने के दौरान धारा 33

के प्रावधानों का उल्लंघन करता है, वहां ऐसे उल्लंघन से व्यथित कोई भी कर्मचारी, निर्धारित तरीके से लिखित रूप में परिवाद कर सकता है,–

(क) ऐसे सुलह अधिकारी या बोर्ड को कर सकेगा और सुलह अधिकारी या बोर्ड ऐसे विवाद का सुलह कराने और ऐसे औद्योगिक विवाद का समझौता कराने के लिये, ध्यान देगा और

(ख) ऐसे मध्यस्थ, श्रम न्यायालय, न्यायाधिकरण या राष्ट्रीय न्यायाधिकरण को कर सकेगा और ऐसे परिवाद की प्राप्ति पर, यथास्थिति, मध्यस्थ, श्रम न्यायालय, अधिकरण या राष्ट्रीय न्यायाधिकरण परिवाद का न्यायनिर्णयन करेगा मानो वह परिवाद इस अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार उसे निर्देशित या उसके समक्ष लंबित विवाद हो और अपना अधिनिर्णय समुचित सरकार को प्रस्तुत करेगा और इस अधिनियम के उपबंध तदनुसार लागू होंगे।

17. इसके बाद अन्नामलाई नेशनल एस्टेट (सुप्रा) के मामले में फसले के पैरा 51 और 52 में न्यायालय ने निम्नानुसार कहाः

''51, अधिनियम की धारा 33ए के तहत जांच की प्रकृति और दायरा, मेरी राय में प्रावधान को एक अप्रभावी उपाय के रूप में प्रस्तुत करता है संघ को नियोक्ता को अधिनियम की धारा 33(1) के तहत अनिवार्य आवश्यकता का पालन करने के लिए बाध्य करने के लिए परमादेश की रिट जारी करने से रोका जाने के लिये एक प्रभावी वैकल्पिक उपाय नहीं

माना जा सकता। अधिनियम की धारा 33ए का सहारा लेना एक ताजा संदर्भ और एक अन्य विवाद से ज्यादा कुछ नहीं है और यथास्थिति बनाए रखने के लिए एक प्रभावी उपाय नहीं है ? निम्नलिखित निर्णयों में, सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट रूप से माना था कि अधिनियम की धारा 33ए के तहत कार्यवाही अधिनियम की धारा 10 के तहत एक संदर्भ से उत्पन्न विवाद से अलग नहीं है। उदाहरण के लिए, अधिनियम की धारा 33 के उल्लंघन में बर्खास्तगी पर कर्मचारी की ट्रिब्यूनल को न केवल उल्लंघन के सवाल से, बल्कि बर्खास्तगी के आदेश के गुणदोष को भी अलग से देखना होगा।

(i) पंजाब नेशनल बैंक लिमिटेड बनाम एआईपीएनबीई फेडरेशन (ए आईआर 1960 एससी 160)

(ii) दिल्ली क्लॉथ एंड जनरल मिल्स लिमिटेड बनाम रामेश्वर दयाल 1960–61 19 एफजेआर 315; एआईआर 1961 एस.सी 689;

(iii) भावनगर नगर पालिका बनाम ए. करीमबाई (1977) 34 एफएलआर 279 (एससी)

''52. इसलिए, अधिनियम की धारा 33ए का सहारा लेना बिल्कुल भी प्रभावी या वैकल्पिक उपाय नहीं है। वास्तव में यह अधिक जटिल और लंबा घुमावदार है कि मुख्य विवाद ही निर्णय का इंतजार कर रहा है। जो प्रबंधन जानबूझकर

और दंडमुक्ति के साथ अधिनियम की धारा 33 ए का उल्लंघ ान करता है, उसे यह दलील देते हुए नहीं सुना जा सकता कि अधिनियम की धाारा 33 ए एक प्रभावी वैकल्पिक उपाय है। भारत के संविधान की धारा 226 का उद्देश्य एक भयावह स्थिति में समय पर न्याय सुनिश्यित करना है और डिफॉल्ट पक्ष के कहने पर वैकल्पिक उपचार की याचिका पर विचार नहीं किया जा सकता है।''

18. यहां यह ध्यान दिया जा सकता है कि आई.डी अधिनियम की धारा 33ए अधिनियम की धारा 6एफ के बराबर है।

19. बाल्को कैप्टिव पावर प्लांट मजदूर संघ (सुप्रा) के मामले में भी याचिका की पोषणीयता के संबंध में एक मुद्दा उठाया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 19 में निम्नानुसार टिप्पणी की:

''19. हालांकि रिट याचिका की विचारणीयता पर कोई गंभीर आपत्ति नहीं की गई थी, तथापि प्रबंधन की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने बताया कि भले ही रोजगार के नियमों और शर्तों के मामले में बाल्को द्वारा अपने दायित्वों का कोई उल्लंघन किया गया हो, अपीलकर्ताओं के पास औद्योगिक कानून के तहत उचित उपाय है। चूंकि कर्मचारियों का दावा समझौते और नियुक्ति पत्रों में कुछ खंडों की व्याख्या से संबंधित है और इसमें कोई विवादित तथ्य शामिल नहीं है और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि यह मुद्दा कुछ सैंकड़ों कर्मचारियों के रोजगार से संबंधित है और इस दावे के आलोक में उनकी विशिष्ट सहमति के बिना उन्हें सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम

से निजी संगठन में स्थानांतरित करना मनमाना और अनुचित है और यह स्थापित स्थिति भी है कि वैकल्पिक उपाय विवेक का नियम है न कि कानून का नियम, हम उच्च न्यायालय के निष्कर्ष को स्वीकार करते हैं और मानते हैं कि के तहत रिट याचिकाएँ हम उच्च न्यायालय के निष्कर्ष को स्वीकार करते हैं और मानते हैं कि रिट याचिकाएँ कर्मचारियों द्वारा दायर संविधान के अनुच्छेद 226 अन्तर्गत याचिका पोषणीय है।''

20. कानून पूर्वव्यापी नहीं हो सकता है, यह भावी होना चाहिए। इस बिंदु पर पूर्व के मामले में दिये गये फैसले का हवाला दिया गया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के कैप्टन केसी अरोड़ा (सुप्रा) निर्णय के पैराग्राफ संख्या 15 में यह प्रतिपादित किया:

''15. शुरूआत में ही यह बताया जा सकता है कि संसद और राज्य विधानमंडल के पास उनके लिये प्रतिबद्ध कानून के क्षेत्र में कानून बनाने की पूर्ण शक्तियां हैं और कुछ संवैधानिक प्रतिबंधों के अधीन वे संभावित और पूर्वव्यापी रूप से कानून बना सकते हैं। हालांकि यह निर्माण का एक प्रमुख सिद्धांत है कि प्रत्येक कानून प्रथम दृष्टया भावी होता है जब तक कि यह स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा पूर्वव्यापी प्रभाव वाला न हो। लेकिन सामान्य तौर पर नियम वहां लागू होता है जहां कानून का उद्देश्य निहित अधिकारों को प्रभावित करना या नया बोझ थोपना या मौजूदा दायित्वों को खराब करना है। जब तब कूनन में मौजूदा अधिकारों को प्रभावित करने के लिये विधायिका के उद्देश्य को दिखाने के

लिये पर्याप्त शब्द नहीं है, तब तक इसे केवल संभावित माना जाता है। जो प्रावधान कानून के पारित होने पर अस्तित्व में किसी अधिकार को छूते हैं, उन्हें स्पष्ट अधिनियम या आवश्यक उद्देश्य के अभाव में पूर्वव्यापी रूप से लागू नहीं किया जाना चाहिए। राज्यपाल भी संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत समान शक्तियों का प्रयोग कर सकते हैं और इसमें थोड़ा भी संदेह नहीं है कि लाया गया संशोधन पूर्वव्यापी बना दिया गया है। आवश्यक निहितार्थ से तत्काल मामले में लगाए गए संशोधनों का निःसंदेह पूर्वव्यापी प्रभाव है।''

21. वास्तव में, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने यह मुद्दा उठाया है कि ट्रिब्यूनल के लिये जो उपाय उपलब्ध है, वह प्रभावी उपाया नहीं है। यहां तक कि अगर अधिनियम की धारा 6एफ के तहत शिकायत दर्ज की जाती है तो यह ट्रिब्यूनल के लिये एक प्रकार की जानकारी है, जिसे बाद में ट्रिब्यूनल द्वारा राज्य सरकार को रिपोर्ट किया जाता है। इसलिये तर्क यह है कि उपाय प्रभावोत्पादक नहीं है। इस बिन्दु पर याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने जयपुर जिला सहकारी भूमि विकास (सुप्रा) के मामले में फैसले पर भरोसा जताया।

22. वास्तव में, जयपुर जिला सहकारी भूमि विकास (सुप्रा) के मामले में अलग–अलग राय के दृष्टिगत बड़ी बेंच को एक संदर्भ दिया गया था। संदर्भ इस प्रकार थाः–

''यदि औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 33(2)(बी) के तहत मंजूरी नहीं दी जाती है, तो क्या बर्खास्तगी का आदेश पारित होने की तारीख से या बर्खास्तगी के आदेश की

मंजूरी न होने की तारीख से अप्रभावी हो जाता है और क्या धारा 33(2)(बी) के तहत आवेदन करने में विफलता बर्खास्तगी के आदेश को निष्क्रिय नहीं कर देगी?''

23. निर्णय के पैरा संख्या 3 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पहले के निर्णयों का संदर्भ दिया है वह इस प्रकार है–

''3. (1) स्ट्रॉबोर्ड एमएफजी. कंपनी बनाम गोविंद और (2) टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी लिमिटेड बनाम एसएन मोदक के मामलों में तीन विद्वान न्यायाधीशों वाली दो पीठों ने यह विचार किया है कि यदि औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947(संक्षेप में "अधिनियम") की धारा 33(2)(बी) के तहत मंजूरी नहीं दी जाती है तो बर्खास्तगी का आदेश पारित होने की तिथि से प्रभावी हो जाता है और इसलिए कर्मचारी बर्खास्तगी की तारीख से अस्वीकृति की तारीख तक वेतन का हकदार हो जाता है। पंजाब बेवरजेज (पी) लिमिटेड बनाम सुरेश चंद में तीन विद्वान न्यायधीशों की एक अन्य खंडपीठ ने विपरीत विचार व्यक्त किया है कि धारा 33(2)(बी) के तहत बर्खास्तगी के आदेश को मंजूरी न देने या आवेदन करने में विफलता बर्खास्तगी आदेश को निष्क्रिय नहीं करेगी। धारा 33(2)(बी) के तहत अनुमोदन के लिए आवेदन करने में विफलता केवल नियोक्ता को अधिनियम की धारा 31 के तहत सजा के लिए उत्तरदायी है और कर्मचारी का उपाये या तो धारा 33–ए के तहत शिकायत के माध्यम से या अधिनियम की धारा 10(1)(डी) के

तहत एक सन्दर्भ के माध्यम से ही है। यह कहा जा सकता है कि इस निर्णय में उपरोक्त दो पूर्व निर्णयों का कोई सन्दर्भ नहीं था।''

24. इसके बाद पैरा 15 और 16 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आई.डी अधिनियम की धारा 33ए, 33(2) (बी) और 33(1) के प्रावधानों पर चर्चा की और निम्नानुसार कहाः–

> "15. यह विचार कि ''जब कोई आवेदन नहीं किया जाता है या किया गया आवेदन वापस ले लिया जाता है, तो योग्यता के आधार पर ऐसे आवेदन को अस्वीकार करने का कोई आदेश नहीं होता है और इस प्रकार बर्खास्तगी या सेवामुक्त करने का आदेश तब तक शून्य या निष्क्रिय नहीं होता है जब तक कि ऐसा आदेश धारा 33–ए के तहत रद्द नहीं किया जाता है,'' इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। हमारे विचार में, धारा 33(2) (बी) के तहत मंजूरी मांगने के लिए आवेदन नहीं करना या किसी भी आदेश से पहले एक बार किये गये आवेदन को वापस लेना, धारा 33 के परंतुक के उल्लंघन का एक स्पष्ट मामला है। एक नियोक्ता जो धारा 33(2)(बी) के तहत आवेदन नहीं करता है या किए गये आवेदन को वापिस ले लेता है, तो उसे ऐसा आवेदन करने के लिए उस पर बनाए गये वैद्य दायित्व से राहत देकर पुरूस्कृत नहीं किया जा सकता है यदि ऐसा किया जाता है, तो वह उस नियोक्ता की तुलना में अधिक खुश या अधिक आरामदायक होगा जो कानून के आदेश

का पालन करता है और उसके द्वारा की गयी कार्रवाई की मंजूरी देने के मामले में प्राधिकारी की जांच के लिये आवेदन करता है। विधि द्वारा शासित व्यवस्था में कानून का पालन और अनुपालन स्पष्ट और आवश्यक होना चाहिए। कोई नियोक्ता किसी कर्मचारी को बर्खास्त करने या सेवामुक्त करने के बाद आवेदन करने से बच सकता है या उसे दाखिल कर सकता है और उस पर कोई आदेश पारित होने से पहले धारा 33(2)(बी) परंतुक के उल्लघंन के बावजूद जो धारा 33–ए के तहत शिकायत करके या एक या अधिक कार्यवाही का सहारा लेना या कोई अन्य औद्योगिक विवाद संस्थित करने या धारा 31(1) के तहत विवाद करना या शिकायत करने का अधिकार प्रदान करता है, को उसकी योग्यता के आधार पर उक्त आदेश निष्क्रय नहीं है, कहकर वापस ले सकता ह। ऐसा दृष्टिकोण किसी कर्मचारी को औद्योगिक विवाद के लंबित होने के कारण संभावित उत्पीडन, अनुचित श्रम व्यवहार या उत्पीडन के खिलाफ उक्त प्रावधान के तहत विशेष रूप से और स्पष्ट रूप से दी गई सुरक्षा को नष्ट कर देता है ताकि एक कर्मचारी को बेरोजगारी की कठिनाई से बचाया जा सके।

''16. धारा 31 उसमें बताए गए अपराधों के संबंध में दंड की बात करती है। इस प्रावधान का उद्येश्य किसी पीडित कर्मचारी को कोई राहत देना नहीं है। यह केवल अपराधी को दंडित करने के लिए है। यह तर्क कि, धारा 31 किसी

कर्मचारी को धारा 33 के उल्लंघन के लिए उपाय प्रदान करती है, अस्वीकार्य है। केवल इसलिए कि दंडात्मक प्रावधान उपलब्ध है या किसी कर्मचारी के पास धारा 33 ए के तहत स्वीकृति को चुनौती देने का अनुतोष है, प्राप्त है, ऐसा नहीं कहा जा सकता कि खारिज किए जाने तक सेवामुक्ति या बर्खास्तगी का आदेश निष्क्रिय या अमान्य हो जायेगा जब तक कि धारा 33ए के अन्तर्गत अपास्त न कर दिया जाए। धारा 31, 33 और 33 ए में ऐसा कुछ भी नहीं है जो अन्यथा सुझाए, यहां तक कि उन्हें संदर्भ में एक साथ पढने पर भी। इन अनुभागों का उद्देश्य विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति करना है।''

25. संदर्भ का उत्तर पैरा संख्या 18 में इस प्रकार दिया गया है :—

''18. उपर कही गई बातों को ध्यान में रखते हुए, हम स्ट्रॉबोर्ड 4 और टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी 5 के मामले में लिए गए दृष्टिकोण से सम्मानपूर्वक सहमत है और उसका समर्थन करते हैं और आगे कहते हैं कि प्रश्न पर पंजाब बेवरेजेज 6 में व्यक्त किया गया विचार सही दृष्टिकोण नहीं हैं । इस निर्णय की शुरूआत में उठाए गए प्रश्न का तदनुसार उत्तर दिया गया है।

26. संजीव कुमार सुप्रा के मामले में, इस न्यायालय ने जयपुर जिला सहकारी भूमि विकास सुप्रा के मामले में निर्धारित कानून के सिद्धांत का पालन किया।

27. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने भी कुछ मुद्दे उठाए हैं जिन पर राज्य सरकार ट्रिब्यूनल के अंतिम निर्णय की प्रतिक्षा कर सकती थी। आखिरकार सत्य की जीत होनी चाहिए, और उन्होंने मारिया मार्गाडिया सेक्वेरिया सुप्रा के मामले में फैसले का उल्लेख किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने, वास्तव में, न्यायालय की भूमिका के बारे में चर्चा की थी और पैरा 35 और 36 में कहा गया था कि–

> '' 35। लोग अपेक्षा करते हैं कि अदालत को यह पता लगाने के लिए अपने दायित्व का निर्वहन करे कि वास्तव में सच्चाई कहां है। न्यायिक प्रणाली की शुरूआत से ही यह स्वीकार किया गया है कि खोज, पुष्टि और सत्य की स्थापना न्याय अदालतों के अस्तित्व के अंतर्निहित मुख्य उद्देय हैं।
>
> ''36. रितेश तिवारी बनाम यूपी राज्य 7 में इस न्यायालय ने बार–बार उद्धरण को दोहराया जो इस प्रकार हैः (एससीसी पृष्ठ 687, पैरा 37) ''37..... प्रत्येक परीक्षण खोज की यात्रा है जिसमें सत्य की खोज है''।
>
> इस न्यायालय ने कहा कि ''शक्ति का प्रयोग न्याय और सार्वजनिक हित के उद्देश्य की पूर्ति एक उचित निर्णय की सहायता के लिए साक्ष्य प्राप्त करने और सच्चाई को बनाए रखने के लिए किया जाना चाहिए।''

28. निर्विवाद रूप से सत्य की खोज न्यायालय का कर्तव्य है।

29. दूसरी ओर, विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि दिनांक 21.08.2020 का शासनादेश विशेष रूप से याचिकाकर्ताओं को जारी नहीं किया गया है, वे यूपीएनएल के माध्यम से लगे सभी श्रमिकों के मानदेय को संशोधित करने के लिए जारी किए गए सामान्य निर्देश हैं। यह विशिष्ट नहीं हैं। विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता भी अपने तर्कों में निम्नलिखित बातें रखतें हैं :–

(i). याचिकाकर्ता यूपीएनएल के माध्यम से एक विशेष अवधि के लिए नियुक्त किये गये था। वे अभी भी काम कर रहे हैं याचिकाकर्ताओं को उस अवधि की समाप्ति के बाद वेतनमान पाने का कोई अधिकार नहीं है जिसके लिए वे लोग नियुक्त हुए थे।

(ii). याचिकाकर्ता अपनी शिकायतों के निवारण के लिए ट्रिब्युनल से संपर्क कर सकते थे, जो वास्तव में उन्होंने किया है। याचिकाकर्ताओं ने अधिनियम की धारा 6एफ के तहत शिकायत दर्ज करके ट्रिब्युनल से संपर्क किया है यदि राज्य ट्रिब्युनल के समक्ष एक पक्ष नहीं है, तो याचिकाकर्ता राज्य को एक पक्ष के रूप में शामिल कर सकता था। अधिनियम के तहत श्रमिकों की शिकायतों के निवारण के लिए एक संपूर्ण तंत्र दिया गया है। ऐसी राहतों के लिए रिट याचिका पर विचार नहीं किया जा सकता था।

(iii). याचिकाकर्ता नियमितीकरण का दावा नहीं कर सकते।

30. विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने पैरा नं. 23 और 24 का भी उल्लेख किया है। राज्य द्वारा दायर प्रतिशपथ पत्र में यह तर्क दिया गया कि, वास्तव में, याचिकाकर्ता के पारिश्रमिक के संबंध में मुद्दा तब विचार के लिए आया था जब उनके कार्यकाल के विस्तार के लिए प्रस्ताव प्राप्त हुआ था। प्रस्ताव राज्य सरकार के वित्त विभाग को भेज दिया गया था और वित्त विभाग की सलाह पर प्रतिवादी संख्या 4 निदेशक स्वजल को दिनांक 05.02.2021 को सूचित किया गया था।

31. यह प्रासंगिक नहीं है कि दिनांक 21.08.2020 का शासनादेश किसकी सलाह पर याचिकाकर्ताओं पर लागू किया गया था। भले ही वित्त विभाग ने शासनादेश दिनांक 21.08.2020 के अनुसार पारिश्रमिक भुगतान की सलाह दी थी, राज्य सरकार इस तथ्य को वित्त विभाग के ध्यान में ला सकती थी क्योंकि विवाद अभी भी ट्रिब्युनल के समक्ष लंबित है और इसके दृष्टिगत जैसा कि अधिनियम की धारा 6ई में बताया गया है, सेवा शर्तों को नहीं बदला जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा नहीं किया गया इसलिए अधिनियम की धारा 6ई के प्रावधान की अवहेलना राज्य द्वारा इस आधार पर करने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि वित्त विभाग ने उसे सलाह दी थी। आखिरकार, वित्त विभाग भी राज्य की शाखाओं में से एक है, जो कानून, विशेषकर अधिनियम की धारा 6ई से बंधा हुआ है।

32. राज्य की ओर से यह भी तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ताओं का कार्यकाल सीमित था, यह एक निर्दिष्ट अवधि के लिए था। इस तर्क की इस मामले में कम प्रासंगिकता है क्योंकि न्यायालय के

समक्ष प्रश्न याचिकार्ताओं के कार्यकाल या उनकी नियुक्ति की प्रकृति के संबंध में नहीं है। एकमात्र सवाल यह कि सेवा शर्तों, विशेषकर याचिकाकर्ताओं के वेतन को बदलने के लिए, राज्य अधिनियम की धारा 6ई के प्रावधान की अवहेलना में प्रतिवादी संख्या 4 को कैसे निर्देशित कर सकता है।

33. अपने तर्क के समर्थन में, विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने महाराष्ट्र राज्य सडक परिवहन निगम और अन्य बनाम कास्टेरिबे राज्य पी. कर्मचारी संगठन, 2009 8 एससीसी 556, परमेश्वर नंदा और अन्य बनाम मुख्य सचिव झारखण्ड और अन्य (2020) 12 एससीसी 131, कर्नाटक राज्य बनाम उमा देवी (2006) 4 एससीसी 1 तथा राजस्थान राज्य व अन्य बनाम दयाललाल और अन्य (2011) 2 एससीसी 429 के मामले में निर्धारित विधि के सिद्धांत को आधार बनाया है।

34. विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने महाराष्ट्र ट्रेड यूनियनों की मान्यता और श्रम प्रथाओं की रोकथाम अधिनियम, 1971 ''एमआरटीयू और पीयूएलपी अधिनियम'' प्रावधानों का संदर्भ दिया, जैसा कि महाराष्ट्र राज्य सडक परिवहन निगम सुप्रा के मामले में चर्चा की गई थी, यह तर्क देने के लिए कि, वास्तव में, इसके तहत संपूर्ण तंत्र दिया गया है। लेकिन, वास्तव में, इस न्यायालय के समक्ष विवाद अधिनियम या आईडी अधिनियम, 1947 के प्रावधानों से संबधित है। यह एमआरटीयू और पीयूएलपी अधिनियम से संबंधित नहीं है।

35. परमेश्वर नंदा सुप्रा के मामले में, विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने फैसले के पैरा 21 का उल्लेख किया। परमेश्वर नंदा

सुप्रा के मामले में, मुद्दा काफी अलग था। यह अधिशेष कर्मचारियों के अवशोषण के संबंध में था और मुद्दा यह था कि क्या अधिशेष कर्मचारियों की नियुक्ति के बाद उन्हें नई नियुक्ति माना जा सकता है या अधिशेष घोषित होने से पहले उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं को गिना जाएगा? उस संदर्भ में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 26 निम्नानुसार कहाः–

> ''26. चूंकि अपीलकर्ताओं को वेतन संरक्षण और वरिष्ठता के बिना कई नियुक्तियों के रूप में समाहित किया गया था, इसके परिणामस्वरूप, वे पेंशन के प्रयोजन के लिए परियोजना के तहत प्रदान की गई अपनी पिछली सेवा को गिनने के हकदार नहीं होंगे। इस प्रकार, हमें उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश 8 में कोई त्रुटि नहीं मिलती है जो वर्तमान अपील में हस्तक्षेप की आवश्यकता हो सकती है। तदनुसार, अपील खारिज कर दी जाती है।''

36. यह उल्लेखनीय है कि मौजूदा मामले में किसी भी याचिकाकर्ता द्वारा किसी भी समय प्रदान की गई सेवाओं की गिनती का कोई सवाल ही नहीं है?

37. उमा देवी (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न सिद्धांत निर्धारित किये। इसमें संविदा नियुक्ति के संबंध में की गई टिप्पणियों का संदर्भ दिया गया है। माननीय सर्वोच्च न्यायाल ने कहा कि **''यदि यह एक संविदा नियुक्ति है, तो नियुक्ति अनुबंध के अंत में समाप्त हो जाती है, यदि यह दैनिक वेतन या आकस्मिक आधार पर नियुक्ति या नियुक्ति थी, तो यह अनुबंध के बंद होने पर समाप्त हो जाएगी।''**

38. दयालाल (सुप्रा) के मामले में, पैरा 12 का संदर्भ दिया गया है, जो नियमितीकरण और वेतन में समानता के संबंध में है। पैरा 12 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्न टिप्पणी की गयी है–

> ''12. शुरूआत में हम नियमितीकरण और वेतन में समानता से संबंधित निम्नलिखित सुस्थापित सिद्धांतों का उल्लेख कर सकते हैं, जो इन अपीलों के संदर्भ में प्रासंगिक हैं–
>
> (i) संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायालय नियमितीकरण, या स्थायी रूप से जारी रखने के लिए निर्देश नहीं देंगे, जब तक कि कर्मचारियों को नियमितीकरण का दावा करने वाले कर्मचारियों को स्वीकृत रिक्त पदों के खिलाफ एक नियमित भर्ती के अनुसार अधिसूचित नियमों के अनुसार खुली प्रतियोगितात्मक प्रक्रिया में नियुक्ति की गई हो। अनुच्छेद 14 और 16 में सम्मिलित समानता का पूर्ण सम्मान किया जाना चाहिए और न्यायालयों को संविधान संरचना का उल्लंघन करने वाले किसी कर्मचारी की सेवाओं का नियमितीकरण के लिए निर्देश नहीं जारी करना चाहिए। जो कुछ भी चयन प्रक्रिया में एक तत्व की पालना की कमी के कारण अनियमित होता है, जो प्रक्रिया की मूल बात नहीं है, उसे नियमितीकरण किया जा सकता है, लेकिन बैक डोर प्रवेश, संवैधानिक योजना के विपरीत नियुक्तियाँ अर्हता से वंचित उम्मीदवारों की नियुक्तियाँ नियमित नहीं की जा सकती है।

(ii) न्यायालय के कुछ अंतरिम आदेशों की आड़ में किसी अस्थायी या तदर्थ या दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी द्वारा सेवा जारी रखने से उसे सेवा में शामिल होने का कोई अधिकार नहीं मिलेगा, क्योंकि ऐसी सेवा ''मुकदमेबाजी रोजगार'' होगी। '' यहां तक कि लंबे समय तक अस्थायी, तदर्थ या दैनिक वेतन वाली सेवा, एक या दो साल की सेवा की तो बात ही छोड़ दें, ऐसे कर्मचारी को नियमितीकरण का दावा करने का अधिकार नहीं होगा, यदि वह स्वीकृत पद के खिलाफ काम नहीं कर रहा है। विधिक अधिकार के अभाव में सहानुभूति और भावना नियमितीकरण के किसी भी आदेश को पारित करने का आधार नहीं हो सकती।

(iii) यहां तक कि जहां एक कट–ऑफ तिथि के साथ नियमितीकरण के लिए एक योजना तैयार की जाती है (यह एक ऐसी योजना है जो उन व्यक्तियों को प्रदान करती है जिन्होंने निर्दिष्ट संख्या में सेवा की है और कट–ऑफ तिथि के अनुसार रोजगार में बने हुए हैं), यह कट–ऑफ तिथि के बाद नियुक्त किए गए अन्य लोगों के लिए यह दावा करना या तर्क देना संभव नहीं है कि कट–ऑफ तिथि बढ़ाकर योजना उन पर लागू की जानी चाहिए या लगातार कट–आफ प्रदान करने वाली नई योजनाएं तैयार करने के लिए निर्देश मांगना चाहिए।

(iv) अंशकालिक कर्मचारी नियमितीकरण पाने के हकदार नहीं हैं क्योंकि वे किसी स्वीकृत पद पर काम नहीं कर रहे हैं। अंशकालिक अस्थायी कर्मचारियों के आमेलन, नियमितीकरण के आमेलन, नियमितीकरण या स्थायी निरंतरता के लिए कोई निर्देश नहीं दिया जा सकता है।

(v) सरकार द्वारा संचालित संस्थानों में अंशकालिक अस्थायी कर्मचारी समान काम के लिए समान वेतन के सिद्धांत पर सरकार के नियमित कर्मचारियों के साथ वेतन में समानता का दावा नहीं कर सकते हैं और न ही निजी रोजगार में कार्यरत कर्मचारी भले ही पूर्णकालिक सेवा कर रहे हों। सरकारी कर्मचारियों के साथ वेतन में समानता की मांग नहीं कर सकते। राज्य के विरुद्ध किसी विशेष वेतन का दावा करने का अधिकार एक अनुबंध या विधि के तहत उत्पन्न होना चाहिए।

देखें कर्नाटक राज्य बनाम उमादेवी (3) (2006) 4 एससीसी 1; 2006 एससीसी (एल एंड एस) 753, एम. राजा बनाम सीईईआरआई एनुकेशनल सोसाइटी (2006) 12 एससीसी 636; (2007) 2 एससीसी (एल एंड एस) 334 एससी चंद्रा बनाम झारखंड राज्य (2007) 8 एससी 279; (2007) 7 2 एससीसी (एल एंड एस) 897, कुरू क्षेत्र सेंट्ल कॉप। बैंक लिमिटेड बनाम मेहर चंद (2007)

15 एससीसी 680: (2010) 1 एससीसी (एल एंड एस) 742 और आधिकारिक परिसमापक बनाम दयानंद (2008) 10 एससीसी 1: (2009) 1 एससीसी (एल एंड एस) 943''

39. तत्काल नियमितीकरण का मामला नहीं है। एकमात्र दावा जो विचाराधीन है वह यह है कि क्या राज्य सरकार दिनांक 21.08.2020 को शासनादेश जारी कर सकती थी जब न्यायनिर्णयन मामला अभी भी लंबित था और यह भी क्या प्रतिवादी संख्या 4 परिणामस्वरूप आदेश जारी कर सकता था?

40. प्रतिवादी संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क प्रस्तुत किया गया कि याचिकाकर्ता दो अलग–अलग न्यायालयों पर दो उपायों का लाभ नहीं उठा सकते। यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ताओं ने ट्रिब्यूनल के समक्ष अधिनियम की धारा 6एफ के तहत शिकयत दर्ज की है। यह याचिकाकर्ताओं का मामला है और याचिकाकर्ताओं के अनुसार, उन्होंने रिट याचिका दायर की क्योंकि ट्रिब्यूनल में पीठासीन अधिकारी नियुक्त नहीं किया गया था। यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया है कि अब ट्रिब्यूनल सक्रिय है और अगली तिथि अक्टूबर, 2021 के पहले सप्ताह में निर्धारित की गई है।

41. प्रतिवादी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित बिंदु भी उठाए:–

(i) चूंकि मामला पहली से ही याचिकाकर्ताओं के अनुरोध पर ट्रिब्यूनल के समक्ष विचाराधीन है, इसलिए यह न्यायालय

ट्रिब्यूनल को शिकायत और न्यायनिर्णयन मामले को यथासंभव शीघ्र निर्णय लेने का निर्देश दे सकता है।

(ii) याचिकाकर्ता संख्या 1 के अनुसार याचिका पोषणीय नहीं है, क्योंकि इससे पहले भी पहली याचिका याचिकाकर्ता संख्या 1 व 2 द्वारा दायर की गई, लेकिन जब आपत्तियां उठाई गईं तो याचिकाकर्ता संख्या 1 का नाम पार्टियों की सूची से हटा दिया गया और बाद में पहली याचिका याचिकाकर्ता संख्या 2 के द्वारा अकेले चलायी गयी।

(iii) पहली याचिका में पारित अंतिम आदेश के विरूद्ध प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा समीक्षा दायर की गई थी, जो अभी भी लंबित है।

42. यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका है। यह अधिकार किसी अधिनियम द्वारा मार्गदर्शित नहीं किया जा सकता है। यहां स्वयं लगाए गए प्रतिबंध हैं। निस्संदेह, वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता की एक भूमिका है। सर्वप्रथम और सबसे महत्वपूर्ण, न्यायालय वैकल्पिक प्रभावी उपाय की प्रासंगिकता पर विचार करेगा।

43. आयकर आयुक्त और अन्य बनाम छबील दास अग्रवाल, (2014) 1 एससीसी 603 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस पहलू की चर्चा की और पैरा 15 में निम्नलिखित टिप्पणी की–

> ''15, इस प्रकार, जबकि यह कहा जा सकता है कि इस न्यायालय ने वैकल्पिक उपचार के नियम के कुछ अपवादों

को मान्यता दी है यानी जहां वैधानिक प्राधिकारी ने प्रश्न में अधिनियम के प्रावाधानों के अनुसार कार्य नहीं किया है, या मौलिक सिद्धांतों की अवहेलना की है न्यायिक प्रक्रिया, या उन प्रावधानों को लागू करने का सहारा लिया गया है जिन्हें निरस्त कर दिया गया है, या जब प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के पूर्ण उल्लंघन में एक आदेश पारित किया गया है, तो थानसिंह नथमल मामले में निर्धारित प्रस्ताव, टीटाघुर पेपर मिल्स केस और इसी तरह के अन्य समान निर्णयों में निर्धारित प्रस्ताव है कि उच्च न्यायालय अनुच्छेद 226 के तहत किसी याचिका पर विचार नहीं करेगा संविधान में यदि पीड़ित व्यक्ति के लिए कोई प्रभावी वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है या जिस विधि के तहत शिकायत की गई है, उसमें शिकायत निवारण के लिए एक तंत्र शामिल है, जो अभी मौजूद है। इसलिए, जब शिकायतों के निवारण के लिए विधि द्वारा एक वैधानिक मंच बनाया जाता है, तो वैधानिक व्यवस्था की अनदेखी करते हुए एक रिट याचिका पर विचार नहीं किया जाना चाहिए।''

44. डी.आर एंटरप्राइजेज लिमिटेड बनाम सीमा शुल्क के सहायक कलेक्टर और अन्य, (2015) 15 एससीसी 431 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे दोहराया कि वैकल्पिक उपाय एक अवधारणा है, जो अकेले स्वयं लगाया गया प्रतिबंध है। माननीय न्यायालय ने प्रस्तर संख्या 23 में निम्न टिप्पणी की–

''23 यदि यह स्वभाविक अधिकार की कमी का मामला होता तो स्थिति अलग होती ऐसा नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उचित रिट्स जारी करते समय उच्च न्यायालय की शक्तियां बहुत व्यापक होती हैं। भले ही कोई वैकल्पिक उपाय हो, जो उच्च न्यायालय को किसी विशेष मामले में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से नहीं रोक सकता है। वैकल्पिक विधिक उपायों के सामने, जब उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार का प्रयोग करने से इनकार करता है, तो यह केवल एक स्वयं लगाया हुआ प्रतिबंध ही होता है। मौजूदा मामले में, जो प्रासंगिक है वह यह है कि अपीलकर्ता ने न केवल रिट याचिका में प्रश्नगत मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए रिट याचिका में प्रार्थना की, यहां तक कि सुनवाई के समय भी (जैसा कि उपर उल्लेख किया गया है), यह अपीलकर्ता ही है जिसने इस तर्क के साथ दबाव डाला कि वैकल्पिक उपाय के अस्तित्व से न्यायालय को गुण–दोष के आधार पर निर्णय देने में बाधा नहीं होनी चाहिए। ऐसी स्थिति में, रिट याचिका की विचारणीयता पर आपत्ति, यदि कोई हो, प्रतिवादी द्वारा की जा सकती थी और अपीलकर्ता को उच्च न्यायालय में तर्क देने के बाद वर्तमान याचिका में इस आपत्ति को उठाना उचित नहीं है कि मामले का निर्णय गुण–दोष के आधार पर किया जाए।''

45. यह विवाद आगे चलकर महाराष्ट्र शतरंज ऐसोसिएशन बनाम भारत संघ और अन्य, (2020) 13 एससीसी 285 मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चर्चा के लिए आया। प्रस्तर संख्या 12 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यूपी स्टेट शुगर कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम कमल स्वरूप टंडन, (2008) 2 एससीसी 41 के मामले में लॉर्ड कोक द्वारा की गई टिप्पणी का उल्लेख किया, जो इस प्रकार हैः–

> ''35..... यह अच्छी तरह से स्थापित है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार न्यायसंगत और विवेकाधीन है। उस अनुच्छेद के तहत शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालय द्वाया ''जहां भी अन्याय पाया जाये, उस तक पहुंचने के लिए'' किया जा सकता है।''

46. माननीय उच्चतम न्यायालय ने प्रस्तर संख्या 13 में निम्नलिखित टिप्पणी कीः–

> ''13. संविधान के तहत उच्च न्यायालय की भूमिका उसके पूरे क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार में विधिक शासन सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण है। इन उत्कृष्ट पारलौकिक लक्ष्यों को प्रापत करने के लिए, अपने रिट क्षेत्राधिकार के तहत उच्च न्यायालय की शक्तियों आवश्यक रूप से व्यापक हैं। उन्हें न्याय की सहायता के लिए प्रदान किया जाता है। इस न्यायालय ने बार–बार माना है कि अपने रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग में उच्च न्यायालय की शक्तियों पर कोई सीमा नहीं लगाई जा सकती है। ए.वी. वंकटेश्वरन बनाम

रामचंद्र शोभराज वाधवानी मामले में न्यायालय की एक संवैधानिक पीठ ने माना कि उच्च न्यायालय द्वारा अपने रिट क्षेत्राधिकार के तहत प्रयोग की जाने वाली शक्ति की प्रकृति स्वाभाविक रूप से उसके समक्ष मामले में उत्पन्न होने वाले विधिक शासन के लिए खतरे पर निर्भर करती हैः (एआईआर पृष्ट 1510, पैरा 10)

> ''10..... हमें केवल यह जोड़ने की जरूरत है कि सामान्य सिद्धांतों की व्यापक लाइनें जिन पर न्यायालय को स्पष्ट रूप से कार्य करना चाहिए, प्रत्येक विशेष मामले के तथ्यों पर उनका आवेदन आवश्यक रूप से विभिन्न प्रकार के व्यक्तिगत तथ्यों पर निर्भर होना चाहिए जो न्यायालय के विवेक के उचित अभ्यास को नियंत्रित करते हैं, और एक ऐसे मामले में जो इस प्रकार प्रमुख रूप से विवेक का एक विषय है। यह संभव नहीं है या यदि ऐसा था भी, तो अनम्य नियमों को निर्धारित करना वांछनीय नहीं होगा, जिन्हें न्यायालय के सामने आने वाले हर मामले में कठोरता के साथ लागू किया जाना चाहिए।
>
> अपने रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग में उच्च न्यायालय की शक्तियों को सख्त कानूनी सिद्धांतों द्वारा सीमित नहीं किया जा सकता है ताकि उच्च न्यायालय को विधिक शासन को बनाए रखने के अपने आदेश को पूरा करने में बाधा उत्पन्न हो।''

47. वास्तव में, व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम ट्रेड मार्क्स रजिस्ट्रार, मुंबई और अन्य, (1998) 8 एससीसी 1 के मामले में, वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के बावजूद, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका पर विचार करते समय माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कुछ अपवाद बनाए गए हैं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर संख्या 14 और 15 में निम्न टिप्पणी की है–

> ''14. संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत विशेषाधिकार रिट जारी करने की शक्ति प्रकृति में पूर्ण है और संविधान के किसी भी अन्य प्रावधान तक सीमित नहीं है। इस शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा न संविधान के भाग 3 में निहित मौलिक अधिकारों में से किसी के प्रवर्तन के लिए केवल बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, निषेध अधिकार वांरटो और उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट जारी करने के लिये किया जा सकता है बल्कि ''किसी अन्य उद्देश्य'' के लिए भी किया जा सकता है।
>
> ''15. संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय को मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए रिट याचिका पर विचार करने या न करने का विवेकाधिकार है। लेकिन उच्च न्यायालय ने अपने कुछ प्रतिबंध लगाए हैं जिनमें से एक यह है कि यदि कोई प्रभावी और प्रभावकारी उपाय उपलब्ध है, तो उच्च न्यायालय आम तौर पर अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं करेगा। लेकिन इस न्यायालय द्वारा वैकल्पिक उपाय को लगातार कम से कम तीन आकस्मिकताओं में बाधा के रूप में कार्य नहीं करने

के लिये माना गया है, अर्थात्, जहां किसी मौलिक अधिकार के प्रवर्तन के लिए रिट याचिका दायर की गयी है या जहां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन हुआ है या जहां आदेश या कार्यवाही पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र के बिना है या किसी अधिनियम की शक्तियों को चुनौती दी गई है। इस बिंदु पर बहुत सारे मामले हैं, लेकिन फोरेंसिक भवर के इस दायरे को कम करने के लिए, हम संवैधानिक विधि के विकासवादी युग के कुछ पुराने निर्णयों को आधार बनाया है क्योंकि वे अभी भी क्षेत्र में हैं।''

48. इस न्यायालय द्वारा तय किए गए एक मामले भुवन चंद्र पांडे और अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य और अन्य, (2006) 2 यूडी, 439 में निम्नलिखित टिप्पणी की–

''9. विधि का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि उच्च न्यायालय इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकता है कि वैकल्पिक उपाय के मामलों को नजरअंदाज नहीं कर सकता है कि वैकल्पिक उपाय के मामलों के अधिकार क्षेत्र से कोई लेना देना नहीं है। यदि पर्याप्त प्रभावी वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है तो आम तौर पर उच्च न्यायालय को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। यदि कोई वैकल्पिक उपचार का लाभ उठाए बिना उच्च न्यायालय दरवाजा खटखटाता है तो उच्च न्यायालय यह सुनिश्चित करेगा कि उसने एक मजबूत मामला बनाया है या असाधारण क्षेत्राधिकार लागू करने के लिये अच्छा आधार मौजूद है। वैकल्पिक उपचार का नियम मूलतः नीति,

सुविधा और विवेक का नियम है। जब याचिकाकर्ता उच्च न्यायालय के समक्ष याचिका दायर करता है तो उसे कारण भी बताना चाहिए कि उसने क्यों सोचा कि वैकल्पिक उपाय प्रभावकारी नहीं होगा। उच्च न्यायालय को उक्त न्यायाधिकरण को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए जहां सरकारी कर्मचारी न्यायाधिकरण के अधिकार क्षेत्र के भीतर सेवा मामले से संबंधित सरकार के आदेश से व्यथित है।''

49. न्यायालय का इरादा माननीय सर्वोच्च न्यायालय की विभिन्न घोषणाओं द्वारा इस निर्णय पर बोझ डालने का नहीं है। जैसा कि उपर उद्धृत किया गया है, विधि के सिद्धांत को पहले ही विधिक नियमों में संक्षेपित किया जा चुका है। सिद्धांत अच्छी तरह से स्थापित है, यदि वैकल्पिक प्रभावी उपाय उपलब्ध है, जहां शिकायतों का निवारण किया जा सकता है, तो न्यायालय को रिट याचिकाओं पर विचार करने में धीमा होना चाहिए।

50. दूसरा प्रश्न यह है कि क्या याचिकाकर्ता ट्रिब्यूनल के समक्ष प्रभावी उपचार का लाभ उठा सकते हैं?

51. माना कि, प्रतिवादी संख्या 4 ने दिनांक 24.10.2017 को स्टाफ के पुनर्गठन का प्रस्ताव अग्रेषित किया। यह प्रस्ताव रिट याचिका का संलग्नक 5 है। यह माना जाता है कि ऐसा प्रस्ताव प्राप्त हुआ था और यह भी स्वीकार किया गया है कि इस प्रस्ताव के द्वारा पदों को कम कर दिया गया और वेतन यूपीएनएल में लगे कर्मचारियों के बराबर कर दिया गया। तालिका 6 में याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने पदों को क्रम संख्या 12, 15 और 16 के रूप में संदर्भित किया है,

जिसके लिए प्रस्ताव ''**यूपीएनएल की दरों के अनुसार वेतन''** था। इस पर विवाद हुआ और मामला दिनांक 03.07.2018 को ट्रिब्यूनल को भेजा गया, जैसा कि स्वीकार किया गया है, यह न्यायनिर्णयन मामले का आधार है। यह अभी भी लंबित था, जब दिनांक 21.08. 2020 को शासनादेश जारी किया गया था। आपत्ति यह है कि धारा 6एफ के तहत शिकायत दर्ज की गई है।

52. आगे चर्चा करने से पहले, अधिनियम की धारा 6ई और 6एफ क्या कहती है, इसे दोहराना उचित होगा। वास्तव में, अधिनियम की धारा 6ई ट्रिब्यूनल के समक्ष कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान सेवा शर्तों आदि में बदलाव न करने का प्रावधान करती है और धारा 6एफ कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान सेवा शर्तों में बदलाव होने पर आकस्मिकताओं के लिए प्रावधान करती है। ये अनुभाग इस प्रकार हैः–

> ''**6ई. कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान कुछ परिस्थितियों में सेवा की शर्तें आदि अपरिवर्तित रहेंगी–**(1) किसी सुलह अधिकारी या बोर्ड के समक्ष किसी सुलह की कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान या किसी श्रम न्यायालय के समक्ष किसी कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान या किसी औद्योगिक विवाद के संबंध में न्यायाधिकरण, कोई भी नियोक्ता,–
>
> (ए) विवाद से जुड़े किसी भी मामले के संबंध में, ऐसे विवाद में संबंधित श्रमिकों के पूर्वाग्रह के लिए, ऐसी कार्यवाही शुरू होने से ठीक पहले उन पर लागू सेवा की शर्तों में बदलाव करें, या

(बी) विवाद से जुड़े किसी भी कदाचार के लिए, उस प्राधिकारी की लिखित अनुमति के बिना, जिसके समक्ष कार्यवाही लंबित है, ऐसे विवाद में शामिल किसी भी कर्मचारी को बर्खास्तगी या अन्यथा बर्खास्तगी या दंडित किया जा सकता है।

(2) किसी औद्योगिक विवाद के संबंध में ऐसी किसी कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, नियोक्ता, ऐसे विवाद में संबंधित श्रमिक पर लागू स्थायी आदेश के अनुसारः—

(अ) विवाद से जुडे किसी भी मामले के संबंध में, ऐसी कार्यवाही शुरू होने से ठीक पहले उस कर्मचारी पर लागू सेवा की शर्तों में बदलाव करें, या

(ब) किसी भी कदाचार के लिए जो विवाद से जुड़ा नहीं है, सेवामुक्त करें या दंडित करें, चाहे बर्खास्तगी द्वारा या अन्यथाः

बशर्ते कि ऐसे किसी भी कामगार को तब तक सेवामुक्त या बर्खास्त नहीं किया जाएगा, जब तक कि उसे एक महीने की मजदूरी का भुगतान नहीं कर दिया गया हो और नियोक्ता द्वारा उस प्राधिकारी को आवेदन नहीं किया गया हो, जिसके समक्ष नियोक्ता द्वार की गई कार्रवाई के अनुमोदन के लिए कार्यवाही लंबित है।

(3) उपधारा (2) में किसी बात के होते हुए भी कोई भी नियोक्ता किसी औद्योगिक विवाद के संबंध में ऐसी किसी कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, ऐसे विवाद में

संबंधित किसी भी संरक्षित कामगार के खिलाफ कोई कार्यवाई नहीं करेगा,–

(अ) ऐसे संरक्षित कर्मकार पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हुए, ऐसी कार्यवाही शुरू होने से ठीक पहले उस पर लागू सेवा की शर्तों में बदलाव करके, या

(ब) ऐसे संरक्षित कर्मकार को सेवामुक्त या दंडित करके, चाहे बर्खास्तगी द्वारा या अन्यथा, उस प्राधिकारी की लिखित अनुमति के साथ जिसके समक्ष कार्यवाही लंबित है।

स्पष्टीकरण– इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए किसी प्रतिष्ठान के संबंध में एक 'संरक्षित कर्मकार' का अर्थ एक ऐसा कर्मकार है, जो प्रतिष्ठान से जुड़े एक पंजीकृत ट्रेड यूनियन का अधिकारी होने के नाते, इस संबंध में बनाए गए नियमों के अनुसार मान्यता प्राप्त है।

(4) प्रत्येक प्रतिष्ठान में, उप–धारा (3) के प्रयोजनों के लिए संरक्षित श्रमिकों के रूप में पहचाने जाने वाले श्रमिकों की संख्या वहां नियोजित श्रमिकों की कुल संख्या के एक प्रतिशत से अधिक नहीं होगी, बशर्ते कि न्यूनतम पांच संरक्षित श्रमिकों की संख्या और अधिकतम एक सौ संरक्षित श्रमिकों की संख्या हो और पूर्वोक्त उद्देश्य के लिए राज्य सरकार स्थापना से जुड़े विभिन्न ट्रेड यूनियनों, यदि कोई हो, के बीच ऐसे संरक्षित श्रमिकों के वितरण के लिए नियम बना सकती है और जिस तरीके से उन्हें चुना

जा सकता है और संरक्षित श्रमिकों के रूप में मान्यता दी जा सकती है।

(5) जहां कोई नियोक्ता अपने द्वारा की गई कार्रवाई की मंजूरी के लिए उप–धारा (2) के प्रावधान के तहत बोर्ड, श्रम न्यायालय या न्यायाधिकरण को आवेदन करता है, संबंधित प्राधिकारी, बिना किसी देरी के, ऐसे आवेदन पर सुनवाई करेगा और जितनी जल्दी संभव हो सके, उसके संबंध में ऐसा आदेश पारित करेगा जो वह उचित समझे।

6एफ. कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान सेवा की शर्तों आदि में परिवर्तन हुआ या नहीं इसके निर्णय के लिये विशेष प्रावधान– जहां कोई नियोक्ता श्रम न्यायालय या न्यायाधिकरण के समक्ष लंबित कार्यवाही के दौरान धारा 6ई के प्रावधानों क उल्लघन करता है, ऐसे उल्लंघन से व्यथित कोई भी कामगार, जैसा भी मामला हो, श्रम न्यायालय या न्यायाधिकरण को निर्धारित तरीके से लिखित रूप में शिकायत कर सकता है, और ऐसी शिकायत प्राप्त होने पर श्रम न्यायालय या न्यायाधिकरण, जैसा भी मामला हो, शिकायत पर निर्णय करेगा जैसे कि यह इस अधिनियम के अनुसार संदर्भित या उसके समक्ष लंबित विवाद था और राज्य सरकार और इसके प्रावधानों के अनुसार अपना पंचाट प्रस्तुत करेगा और इस अधिनियम के प्रावधान तदनुसार लागू होंगे।''

53. अधिनियम की धारा 6एफ के मात्र अवलोकन से पता चलता है कि, वास्तव में, यदि सेवा शर्तों में इस तरह के बदलाव की सूचना

ट्रिब्यूनल को दी जाती है, तो ट्रिब्यूनल शिकायत पर फैसला सुनाएगा, जैसे कि यह उसके लिए संदर्भित एक विवाद था और फिर राज्य सरकार को एक पुरस्कार प्रस्तुत करेगा।

54. यह ध्यान दिया जा सकता है कि अधिनियम की धारा 6ई के नियोक्ता को ट्रिब्यूनल के समक्ष कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान सेवा शर्तों को बदलने से रोकती है। धारा 6ई की उपधारा (1) में प्रयुक्त शब्द ''नियोक्ता'' है। यदि नियोक्ता सेवा शर्तों में बदलाव करता है, तो इसकी सूचना ट्रिब्यूनल को दी जा सकती है।

55. इसमें कोई विवाद नहीं है कि शासनादेश दिनांक 21.08.2020 के आधार पर याचिकाकर्ताओं का वेतन कम कर दिया गया है और इसे उन श्रमिकों के बराबर कर दिया गया है, जो यूपीएनएल के माध्यम से लगे हुए हैं। विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि वास्तव में, राज्य श्रमिकों के दो समूहों के बीच भेदभाव नहीं कर सकता है, एक स्वजल में यूपीएनएल के माध्यम से काम कर रहा है और दूसरा अन्य विभागों में काम कर रहा है।

56. राज्य के अपने कारण हो सकते है, लेकिन विधि को अपना काम करना होगा। यह तथ्य है कि वर्ष 2017 में, राज्य ने याचिकाकर्ताओं के वेतन को यूपीएनएल कर्मचारियों के बराबर करने का प्रयास किया था। इसे पहली याचिका में चुनौती दी गई जब राज्य ने किया कि उन्होंने ऐसा आदेश वापस ले लिया है और इसके आधार पर पहली याचिका का निपटारा कर दिया गया।

57. केवल इस स्तर पर यहां कुछ सन्दर्भ दिये जा सकते हैं।

58. वर्ष 2001 में, जब याचिकाकर्ताओं की सेवाएं उत्तराखंड राज्य में ली गईं, तो 28.04.2001 का एक शासनादेश जारी किया गया था,

जो रिट याचिका का संलग्नक 9 है, और इसमें याचिकातकर्ताओं के वेतनमान आदि के बारे में बताया गया है। इतना हीं नहीं, दिनांक 14.07.2005 को यूपीएसयूएल द्वारा स्पष्ट रूप से कहा गया कि याचिकाकर्ताओं की सेवा शर्तों से छेड़छाड़ नहीं की जाएगी। यह न्यायालय इस बात का मूल्यांकन कर रहा है कि क्या ट्रिब्यूनल के समक्ष कार्यवाही जारी रहने के दौरान याचिकाकर्ताओं की सेवा शर्तों को बदला जा सकता था?

59. तथ्य यह है कि पहले राज्य द्वारा याचिकाकर्ताओं के वेतन को कम करने का प्रयास किया गया था और न्यायालय के हस्तक्षेप के बाद, राज्य ने एक बयान दिया और आदेश दिनांक 15.09.2017 को वापस ले लिया। यह भी सच है कि दिनांक 21.08.2020 का शासनादेश केवल याचिकाकर्ताओं तक ही सीमित नहीं है। यह ऐसेसभी श्रमिकों पर लागू एक सामान्य आदेश है जो जो यूपीएनएल के माध्यम से लगे हुए हैं। विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने यही तर्क दिया है। लेकिन, तथ्य यह है कि यह याचिकाकर्ताओं को भी नियंत्रित करता है। वर्ष 2017 में राज्य ने ऐसा करने की कोशिश की, लेकिन फिर ऐसा आदेश वापस ले लिया. अब राज्य ने ऐसा तब किया है जब नियायनिर्णयन मामला लंबित है और दिनांक 21.08.2020 के शासनादेश जारी होने के बाद, उत्तराखंड सरकार के एक अतिरिक्त सचिव द्वारा 05.02.2021 को एक और आदेश जारी किया गया था और इसे स्पष्ट रूप से प्रतिवादी संख्या 4 को संबोधित किया गया था। इसलिए, विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा दिया गया यह तर्क कि दिनांक 21.08. 2020 का शासनादेश विशेष रूप से याचिकाकर्ताओं पर लागू नहीं

है, स्वीकार करने के लिए कोई योग्य नहीं है। इसे याचिकाकर्ताओं सहित सभी पर लागू कर दिया गया है और उत्तराखण्ड सरकार के अतिरिक्त सचिव द्वारा जारी दिनाक 05.02.2021 के बाद के आक्षेपित आदेश द्वारा इसे प्रतिवादी संख्या 4 निदेशक स्वजल को अवगत करा दिया गया है। इस शासनादेश दिनाकित 21.08.2020 को याचिकाकर्ता पर लागू करने के लिये कहा गया। यह प्रतिवादी संख्या 4 ने दिनाक 12.02.2021 को किया जब उन्होंने याचिकाकर्ताओं के लिये दिनांक 21.08.2020 के शासनादेश को लागू किया। इसलिये एक तथ्य स्पष्ट है कि जहां तक याचिकाकर्ताओं के वेतन का सवाल है, सेवा शर्तों को न्यायनिर्णयन मामले के लंबित रहने के दौरान राज्य द्वारा बदल दिया गया है।

60. जो संदर्भ ट्रिब्यूनल को दिया गया था वह न्यायालय के समक्ष है। यह रिट याचिका का संलग्नक 6 है, यह दर्ज करता है कि प्रतिवादी संख्या 4 निदेशक स्वजल नियोक्ता है और कर्मचारी स्वजल कर्मचारी संघ है, यानि याचिकाकर्ता संख्या 1। राज्य ने मामले को संदर्भित किया है। राज्य का कामगारों के साथ कोई विवाद नहीं था। विवाद नियोक्ता और कर्मचारी के बीच था। नियोक्ता प्रतिवादी संख्या 4 निदेशक स्वजल था और याचिकाकर्ता कर्मचारी थे।

61. अधिनियम की धारा 6ई के दृष्टिगत नियोक्ता न्यायनिर्णयन मामले के लंबित रहने के दौरान सेवा शर्तों में बदलाव नहीं कर सकता था। राज्य ने हस्तक्षेप किया, इसे ऐसा कहा जा सकता है जैसे रेफरी ने किसी पार्टी के लिये खेलना शुरू कर दिया है और

राज्य ने प्रतिवादी संख्या 4 निदेशक स्वजल के लिये खेलना शुरू कर दिया है। शासनादेश दिनांकित 21.08.2020 को यूपीएनएल के माध्यम से लगे सभी श्रमिकों पर लागू कर दिया गया है। राज्य यहीं नहीं रूका, दिनांक 05.02.2021 को एक संचार द्वारा उत्तराखण्ड सरकार के अतिरिक्त सचिव ने प्रतिवादी संख्या 4 को इस शासनादेश दिनांकित 21.08.2020 को याचिकाकर्ताओं पर लागू करने के लिये निर्देशित किया। हालांकि यह अप्रत्यक्ष रूप से दिखता है लेकिन वास्तव में यह अप्रत्यक्ष रूप से नहीं है बल्कि राज्य ने सीधे मामले में हस्तक्षेप किया है और याचिकाकर्ताओं की सेवा शर्तों को बदल दिया है।

62. राज्य न्यायाधिकरण के समक्ष एक पक्ष नहीं है। राज्य ने मामले को ट्रिब्यूनल को भेज दिया है। जैसा कि कहा गया है, विवाद प्रतिवादी संख्या 4 और याचिकाकर्ता के बीच है। नियोक्ता द्वारा अधिनियम की धारा 6एफ के मद्देनजर सेवा शर्त में बदलाव नहीं किया जा सकता था। राज्य का कार्य न्यायाधिकरण के समक्ष निर्णय के लिये नहीं है। दिनांक 21.08.2020 के शासनादेश को चुनौती देकर राज्य के अधिनियम को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गयी है इसलिये इस न्यायालय का मानना है कि यद्य पि याचिकाकर्ताओं के पास ट्रिब्यूनल के समक्ष कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान नियोक्ता द्वारा सेवा शर्तों में किये गये किसी भी बदलाव के लिये अधिनियम की धारा 6एफ के तहत शिकायत दर्ज करने का एक उपाय है, लेकिन राज्य की कार्रवाई को ट्रिब्यूनल के समक्ष अधिनियम की धारा 6एफ के तहत शिकायत में चुनौती नहीं दी जा सकती है। इसलिये इस न्यायालय का मानना है

कि याचिकाकर्ताओं के पास ट्रिब्यूनल के समक्ष कोई प्रभावी उपाय नहीं है और रिट याचिका सुनवाई योग्य है।

63. एक आपत्ति उठायी गयी है कि स्वजल कर्मचारी संघ कार्यवाही शुरू नहीं कर सकता है। यह न्यायालय इस विवाद में जाने का इरादा नहीं रखता है क्योकि इसका सीधा सा कारण यह है कि राज्य सरकार द्वारा ट्रिब्यूनल को जो संदर्भ दिया गया था, जो कि याचिका का अनुबंध 6 है, उसमें स्वजल कर्मचारी संघ को कामगार और प्रतिवादी संख्या 4 नियोक्ता के रूप में दर्ज किया गया है। यह सच है कि पहली याचिका में दिनांक 22.09.2017 को न्यायालय ने दर्ज किया कि ''याचिकाकर्ता के अधिवक्ता याचिककर्ता संख्या 1 की ओर से वर्तमान रिट याचिका को वापस लेने की अनुमति चाहते हैं, एशोसियशन के व्यक्तिगत सदस्यों की ओर से नई रिट याचिका दायर करने की स्वतंत्रता के साथ'', लेकिन तथ्य है कि पहली याचिका पर दिनांक 03.07.2018 को निर्णय लिया गया था। यह निर्णय तत्काल याचिका का अनुबंध 17 है, इसमें याचिकार्ताओं को स्वजल कर्मचारी संघ और अन्य'' के रूप में दर्ज किया गया है, हालांकि एक संशोधित ज्ञापन है, जिसमें अरविंद पायल को एकमात्र याचिकाकर्ता के रूप में दर्ज किया गया है।

64. जैसा भी हो, अरविंद पायल वर्तमान याचिका में भी याचिकाकर्ता हैं तो यह न्यायालय केवल इस आधार पर यह मानता है कि याचिकाकर्ता संख्या 1 ने पहले याचिका वापस ले ली थी, यह नहीं कहा जा सकता कि उसके आदेश पर याचिका सुनवाई योग्य नहीं है।

65. अधिनियम की धारा 6ई के अनुसार न्यायनिर्णयन मामले के लंबित रहने के दौरान सेवा की शर्तों को नहीं बदला जा सकता था। राज्य सरकार ने हालांकि विवाद को ट्रिब्यूनल में भेज दिया लेकिन खुद ही दिनांक 21.08.2020 को शासनादेश जारी किया और नियोक्ता यानी प्रतिवादी संख्या 4 को याचिकाकर्ताओं के सम्बन्ध में दिनांक 21.08.2020 के शासनादेश को लागू करने के लिये आगे निर्देशित किया। इसलिये राज्य ने अधिनियम की धारा 6ई के प्रावधानों का उल्लघंन किया है। यह सच है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा ट्रिब्यूनल के समक्ष अधिनियम की धारा 6एफ के तहत शिकायत की गयी है उस शिकायत की प्रति संलग्नक 26 के रूप में न्यायालय के समक्ष भी है और याचिकाकर्ता उस शिकायत के प्रस्तर संख्या 31 में निम्नानुसार लिखते हैंः

> ''31. उपरोक्त तथ्यों के मद्देनजर यह स्थापित होता है कि उन श्रमिकों की सेवा शर्तों में अवैध परिवर्तन हुआ है जिनके कारण इस याचिका में शामिल है और इस तरह के परिवर्तन को प्रभावित करने के लिये इस ट्रिब्यूनल से कोई अनुमति नहीं ली गई है। इस प्रकार लगाये गये आदेश शून्य है और अनुचित श्रम अभ्यास के समान हैं। शिकायतकर्ता हर्जाने और मुआवजे के भी हकदार हैं जिसे न्यायालय उचित समझे।''

66. बहस के दौरान याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क प्रस्तुत किये गये कि दिनांक 21.08.2020 के शासनादेश की जांच ट्रिब्यूनल द्वारा नहीं की जा सकती है। ट्रिब्यूनल अधिक से अधिक दिनांक 12.02.2021 के आक्षेपित आदेश की जांच कर सकता

है जो नियोक्ता यानि प्रतिवादी संख्या 4 निदेशक स्वजल द्वारा जारी किया गया था। उनका कहना था ट्रिब्यूनल के समक्ष दिया गया उपाय प्रभावोत्पादक नहीं है।

67. इस न्यायालय ने पहले ही माना है कि दिनांक 21.08.2020 के शासनादेश का परीक्षण ट्रिब्यूनल के समक्ष नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह नियोक्ता द्वारा पारित आदेश नहीं है। दिनांक 21.08. 2020 का शासनादेश अधिनियम की धारा 6ई के तहत नियोक्ता द्वारा की गयी अवज्ञा नहीं है। नियोक्ता ने दिनांक 21.08. 2020 के शासनादेश और प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा प्राप्त दिनांक 05. 02.2021 के एक संचार की आड़ में उत्तराखण्ड सरकार के अतिरिक्त सचिव ने अधिनियम की धारा 6ई के प्रावधान के तहत अवज्ञा की है। इसलिये अधिनियम की धारा 6एफ के तहत शिकायत दर्ज होने के बावजूद प्रभावी उपाय की अनुपलब्धता को देखते हुए इस न्यायालय का मानना है कि रिट याचिका सुनवाई योग्य है।

68. उपरोक्त कारणों के आधार इस न्यायालय का विचार है कि रिट याचिका स्वीकार की जानी चाहिए।

69. रिट याचिका स्वीकार की जाती है। याचिकाकर्ताओं के आधार पर शासनादेश दिनांक 21.08.2020 और उसके बाद के आदेश दिनाक 05.02.2021, 12.02.2021 को अपास्त किया जाता है।

(रविन्द्र मैठाणी जे,)
29.09.2021